International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 03, No. 03(I), July - September, 2021, pp.177-180

संस्कृत साहित्य में स्त्री–चेतना

सीमा खड़कवाल*

प्रस्तावना

साहित्य जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। समाज जैसा भी होगा उसकी गूंज साहित्य में प्रतिध्वनित होगी ही। किसी भी समाज की दशा और दिशा के आकलन में तत्कालीन साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्य शून्य में सृजित नहीं होता हैं। साहित्यकार समाज का ही अंग होता है और उस पर अपने समय और समाज का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

आज वैश्विक परिदृश्य में जहाँ नारी पुरुषों के समकक्ष खड़ी होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है वही भारतीय समाज और साहित्य में भी स्त्री विमर्श एक आन्दोलन का रूप ले चुका है। आज सरकारें भी जब स्त्री सशक्तिकरण और स्त्री कल्याण के लिए अनेक कार्यक्रम और योजनाएं संचालित कर रही है,नारी हित में अनेक नये कानूनों को लागू करने का प्रयास कर रही है, वहाँ यह जानना रोचक रहेगा कि हमारे प्राचीन साहित्य में भी अपनी स्वतन्त्रता एवं अधिकारों के लिए पितृसत्तात्मक समाज के वर्चस्व के विरुद्ध संघर्ष करने वाली एवं अपनी प्रतिभा व योग्यता का लोहा मनवाने वाली स्त्रियों के रूप में स्त्री चेतना की अनेक छवियाँ संस्कृत साहित्य में उपस्थित रही है।

भारतीय संस्कृति में नारी का गौरवपूर्ण स्थान रहा है और साहित्य ने कभी भी नारी की उपेक्षा नहीं की है। प्राचीन से लेकर अर्वाचीन काल तक साहित्यकारों ने समाज में नारी की परिवर्तित स्थिति पर दृष्टि रखते हुए उसका साहित्य में अंकन किया है। हमारी प्राचीन साहित्यिक परम्परा पाँच हजार वर्षों से भी पूर्व संस्कृत भाषा में लिखे गये वैदिक ग्रन्थों से आरम्भ होती है। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि इस काल में समाज में स्त्रियों का सम्मानजनक स्थान था। ऋग्वेद और अथर्ववेद के समय में भारतीय समाज निर्माण की स्थिति में था और उसके विचार, संस्थायें, धर्म एवं समाज अपना स्वरूप ग्रहण कर रहे थे। उस समय आर्य पूर्ण रूप से राजनैतिक एवं सैनिक गतिविधियों में व्यस्त रहे। ऐसी परिस्थितियों में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्रिया–कलापों में स्त्रियों ने पुरुषों के समकक्ष सक्रिय भागीदारी निभायी।[1]

वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था और कुमारियों के लिए शिक्षा अपरिहार्य और अनिवार्य मानी जाती थी। वेदो में वर्णित है कि माता– पिता परमेश्वर से यह प्रार्थना किया करते थे कि उनकी पुत्री पंडिता अथवा ब्रहम्वादिनी बने–

अथ य इच्छेद् दुहिता में पंडिता जायेत सर्व मायुरियादिति ।

तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तं अश्रयातां इश्वरों जनयितवै।।(वृहदारणय कोपनिषद् 6.4.17)

उस काल में समाज में गुरुकुल विद्यमान थे जिनमें छात्र–छात्राएँ समान रूप से प्रविष्ट होने के अधिकारी थे। वेदो में ज्ञानार्जन हेतु ऋषिकुलों एवं गुरूकुलों में बालिकाओं के प्रवेश तथा उनके ब्रहमचर्य का वर्णन प्राप्त होता है–

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम ।।, (अथर्व. 11.5.18)

---

6 सह आचार्य हिन्दी, स्व. राजेश पायलट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बॉदीकुई, राजस्थान।

वैदिक साहित्य में स्त्रियों का ऋषिकाओं के रूप में भी उल्लेख आता है जो वेद मंत्रों की ज्ञाता और रचयिता है। उस काल में लोपामुद्रा, सरमा, अपाला, घोषा, शची पौलोमी, विश्वधारा, रोमशा, गोधा, वाक, सुर्या आदि स्त्रियों को ऋषिकाओं के रुप में मान्यता मिली हुई थी। 'श्रवणु क्रमणिका' में उल्लेखित प्राचीन परम्परा कें अनुसार ऋग्वेद की रचना में 20 स्त्रियों का योगदान माना गया है।[2] वैदिक काल में उच्च शिक्षा प्राप्त करके अपने आपको समाज में स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करने वाली इन ऋषिकाओं ने स्पष्ट कर दिया कि स्त्रियाँ प्रतिभा और योग्यता के मामले में प्राकृतिक रुप से पुरूषों की तुलना में कहीं कमजोर नहीं है।

वेदों में ही विपश्यला, मुद्गलानी, रूशमा आदि स्त्रियों का वर्णन भी मिलता है जो युद्ध कला में निष्णात थी। विपश्यला अपने पति के साथ युद्ध में लड़ी और शत्रुओं से लडते हुए उसने अपना एक पैर गवां दिया। बाद में अश्विनी कुमारों ने उसका उपचार किया। मुद्गल की पत्नी मुद्गलानी ने अपनी गायें चुरा कर ले जाते हुए दस्युओं से पति के साथ मिलकर संघर्ष किया था। रुशमा के भी इन्द्र से युद्ध करने की कथा आती है। ये कथाएँ दर्शाती है कि उस समय स्त्रियां सैन्य शिक्षा गृहण करने के लिए भी स्वतन्त्र थी। वैदिक संस्कृति और सभ्यता के निर्माण में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। सैन्य, राजनीतिक आर्थिक, आध्यात्मिक एवं बौद्धिक कार्यों में नारी की पूर्ण भागीदारी थी। उसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। पुष्पावती खेतान के अनुसार, ''वेदों में स्त्री–पुरुष को जीवन रूपी रथ के दो पहिए माना हैं, उन्हें आकाश और भूमि के समान एक–दूसरे का पूरक उपकारक माना है।''[3]

वैदिक काल में किसी युवती के लिए अपना पति चुनना सहज बात थी। जब सुवर्चला अपने पिता से अपने योग्य वर स्वंय चुनने के लिए कहती है तो पिता उसे इसकी अनुमति देते है। सुवर्चला अपने सम स्तर के ब्रह्मज्ञानी एवं तेजस्वी युवक श्वेतकेतु का अपने वर के रूप में चयन कर उससे विवाह करती है। वैदिक काल में 'समन' एक ऐसा उत्सव था जिसमें सभी आयु, वर्ग और सामाजिक स्तर के लोग भाग लेते थे। विद्वानों के अनुसार इस उत्सव में विशेषरूप से विवाह योग्य युवा नारियाँ बड़ी संख्या में उपस्थित होती थी और वे इस अवसर का उपयोग अपने योग्य युवकों से मिलने और उन्हें आकर्षित करने के लिए करती थी। यहाँ तक कि परिपक्व आयु की अविवाहित स्त्रियाँ और विधवाएँ अपने योग्य जीवन साथी पाने के लिए यहाँ आती थी।[4]

उस समय पिता भी किसी कन्या का विवाह तब ही कर सकता था जब स्वयं कन्या विवाह करने के लिए उत्सुक हो।

पुषां त्वेतो नयतु हस्तगृहयाश्विनाः त्वा प्रवहता रथेन।
गृहा–गच्छ गृहपत्नी यथा सो वशिनी त्वं विदथमा वदासि 11 26 11
(ऋग्वेद भाष्ये दशम मंडल, अध्याय 7 सू. 85)

वैदिक काल में कन्या का पोषण करने में समर्थ और प्रज्ञा द्वारा उसके सौभाग्य की वृद्धि करने वाला पुरुष ही कन्या के पाणिग्रहण के योग्य समझा जाता था। ससुराल में कन्या अपने गृह की मालकिन होती थी और अपने पति के साथ यज्ञ – संयुक्ता पत्नी कादायित्व निर्वाह करती थी। ससुराल में उसे भृत्य, बन्धु आदि से आज्ञा मनवाने वाली और अपने प्रेम व विवेकपूर्ण व्यवहार से गृह कार्य का संचालन करने वाली कहा गया है।

वैदिक काल के बाद भी नारी शिक्षा का महत्व बना रहा। वाल्मीकि रचित संस्कृत महाकाव्य रामायण में भी ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जो सम्पूर्ण जीवन अविवाहित रहते हुए अध्ययन, यज्ञ कर्म , तपस्या और धर्म चर्चा में अपना जीवन व्यतीत करती थी । स्वयंप्रभा और वेदवती ऐसी ही ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ थी। सीता की खोज में गये हनुमान और उनके साथियों का एक तेजस्विनी और वृद्धा तापसी से परिचय हुआ था । यह मेरूसावर्णि ऋषि की पुत्री स्वयंप्रभा थी जो ऋक्षबिल नामक गिरि दुर्ग के निकट अपने पिता के आश्रम में रहती थी। इन्होंने मार्ग भटके हुए हनुमान और उनके साथियों का स्नेहपूर्वक आतिथ्य करने के साथ उनका मार्गदर्शन भी किया था। वेदवती भी ब्रह्मर्षि कुशध्वज की पुत्री थी। वह पिता के बाद भी मिथिला राज्य में हिमालय के निकट एक आश्रम में ब्रह्मवादिनी के रूप में अपना जीवन बिताती रही थी। बाद में उसने अपने ज्ञान और तप से ऋषितुल्य पद प्राप्त कर लिया था। रामायण में राम के प्रति भक्ति और प्रेम भाव से विहव्ल हो उन्हें

अपने जूठे बेर खिलाने वाली शबरी के प्रसंग से डॉ. एस.सी. सरकार ने रामायण काल में स्त्री शिक्षा के बारे में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालते हुए बताया कि रामायण काल में दक्षिणी पूर्वी भारत की महिलाएं आश्रमों में रहकर पुरूषो की तरह सर्वोच्च ज्ञान में दीक्षित होने का अधिकार रखती थी। इतना ही नहीं उनकी शिक्षा के दौरान आर्थिक या अन्य संकट के उपस्थित होने के समय उन्हें वर्षों तक किसी भी आश्रम की सारी व्यवस्था भी सौंपी जा सकती थी। शबरी ने भी अपना समस्त जीवन अपने आश्रम के निमित ही उत्सर्ग कर रखा था। उस समय देश में ऐसे कई आश्रम थे जहॉ तपस्विनियॉ धर्म चर्चा व कर्मकाण्ड में लीन रहती थी।[5]

रामायण में स्त्री चेतना से ओत प्रोत सशक्त स्त्री–चरित्र के रूप में जों महिलाएं हमारे सामने आती है उनमें कैकेयी, मन्दोदरी और सीता प्रमुख है। राजा दशरथ ने प्रौढ़ वय में युवा राजकुमारी कैकेयी से राज्य शुल्क देकर विवाह किया था। इसका तात्पर्य था कि कैकेयी से जन्मा पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा। वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है कि राम के राज्याभिषेक के अवसर पर कैकेयी भी अत्यन्त प्रसन्न थी। राज्याभिषेक के अवसर पर कैकेयी की दासी मंथरा ही उन्हें देवासुर संग्राम की घटना का स्मरण कराती है–

अपवाह्म त्वया देवि संग्रामान्नष्ट चेतनः
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया ।। 16।।
रामायण,अयोध्या काण्ड,नवम सर्ग

एक समय देवासुर संग्राम में राजा दशरथ इन्द्र की सहायता करने के लिए गये, उस समय कैकेयी के आग्रह पर वे उसे भी अपने साथ ले गये। असुरों के साथ युद्ध में घायल होकर मरणासन्न स्थिति में पहुँचे दशरथ को कैकेयी अपने साहस और कौशल से रणक्षेत्र से बाहर ले आयी और वहॉ भी असुरों के प्रहार से बचाकर उनकी प्राणरक्षा की। दशरथ इस बात से प्रसन्न हुए और उन्होंने कैकेयी को दो वर मांगने के लिए कहा। उस समय कैकेयी ने उन्हें समय आने पर मांगने के लिए कहकर टाल दिया।

कैकेयी ने राम के राज्याभिषेक के अवसर पर दो वर मांगकर 'रघुकुल की रीति' के विरुद्ध आचरण करने वाले दशरथ को उस वचन भंग के लिए दण्डित किया है जो उन्होंने विवाह के अवसर पर कैकेय नरेश से किया था। इस वचन के बारे में कैकेयी के अलावा दशरथ की अन्य रानियॉं, उनके पुत्र और राजदरबार के लोग भी जानते थे। लंकेश रावण की पटरानी मन्दोदरी बुद्धिमती स्त्री है,वह रावण को सीता को राम को लौटा देने और राम से सन्धि करने के लिए बार–बार समझाने का प्रयास करती है। लेकिन सब व्यर्थ रहता है। लेकिन जब रावण अपने स्वजनों को खोने के बाद भावी पराजय से आशंकित होकर राम से संन्धि करने की बात मन्दोदरी से कहता है तो वह उसके स्वाभिमान को चुनौती देती हुई स्वयं युद्ध क्षेत्र में उतरने का प्रस्ताव कर उसे लज्जित करती है।

सीता सुकुमारी और आदर्श पतिव्रता होकर भी भीतर से स्वाभिमानी और नारीत्व की गरिमा और औदात्य से परिपूर्ण है। रामायण में राम ने अग्नि परीक्षा लेने के बाद भी लोकोपवाद के कारण अपनी पतिव्रता पत्नी को गर्भावस्था में निर्वासित कर दिया। प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा तो इसे नारीत्व का अभिशाप मानती है। वाल्मीकि रामायण में उल्लेखित है कि सीता द्वारा भरी सभा में अपनी चारित्रिक पवित्रता का प्रमाण देने के बाद धरती ने सीता को अपनी गोद में स्थान दे दियां था। यदि आधुनिक समय में हम इस तथ्य को भी अस्वीकार कर दे तो यह तो स्पष्ट है कि अपनी पवित्रता का प्रमाण देकर भी सीता ने राम के साथ रहना स्वीकार नहीं किया। राम के द्वारा निर्वासित करने के बाद वाल्मीकि आश्रम में उन्हें आश्रय मिला, वे वही रही और कभी भी उन्होंने राम के पास न तो कोई याचना या सन्देश भिजवाया और न ही वे कभी अपने पितृगृह गयी। उन्होंने अकेले ही अपनी दोंनो संतानों को शिक्षित, संस्कारित और वीरता से पोषित किया।

वेदव्यास रचित महाभारत में भी द्रौपदी, अम्बा, गांधारी, सत्यवती और कुन्ती असाधारण स्त्रियॉं है। काशी नरेश की सबसे बड़ी पुत्री अम्बा भीष्म द्वारा स्वयंवर सभा से हरण किये जाने पर भीष्म से प्रतिशोध लेने के लिए घोर तप–साधना में तत्पर हो जाती है और शिखंडी के रूप में पुनर्जन्म लेकर भीष्म की मृत्यु का कारण बनती है। वेदव्यास की जननी राजमाता सत्यवती ऐसी स्त्री है जो समाप्ति के कगार पर पहुॅचे अपने वंश को अपने बुद्वि बल से बचा लेती है।

महाभारत में कुन्ती अपने सम्पूर्ण जीवन में संघर्ष करती नजर आती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह धैर्यपूर्वक अपने पाँचों पुत्रों में क्षत्रियोचित गुणों का विकास करते हुए उन्हें अपने अधिकारों और न्याय के लिए लड़ना सिखाती है। द्रौपदी ऐसी निर्भीक स्त्री है जो भरी सभा में अपमानित होने पर पितृ तुल्य पुरुषों एवं गुरूजनों को धिक्कारती है और अपने उन पतियों की वीरता को कोसती है जो भरी सभा में उसे अपमानित होते देखकर भी चुप है। उसका हृदय प्रतिशोध की अग्नि में निरन्तर दग्ध रहता है। वह अपने अपमान को एक क्षण के लिए भी नहीं भूला पाती। उसका आक्रोश उसकी अस्मिता का परिचायक है। पौरूष से युक्त द्रोपदी के अपमान की कीमत कौरवों को महाभारत युद्ध में अपने सर्वनाश रूप में चुकानी पडती है।[6] भट्ट नारायण रचित ''वेणी संहार'' में भी द्रौपदी अपने अपमान का प्रतिशोध लेने की शपथ पाण्डवों को भूलने नहीं देती।

महाभारत में आयी कथा के अनुसार शकुन्तला ऐसी स्त्री के रूप में हमारे सामने आती है जो राजा दुष्यन्त से भरी सभा में वाद– विवाद करके अपनी तर्क क्षमता और शास्त्रोचित ज्ञान का परिचय देते हुए अपने पुत्र भरत को उसका अधिकार दिलवाती है। (महाभारत, आदि पर्व अध्याय 69)

योगिनी सुलभा मिथिला के धर्मध्वज नामक राजा की सभा में उपस्थित होकर मोक्षशास्त्र में अपने असाधारण पांडित्य का परिचय देती है। अपने योग्यवर नहीं मिलने के कारण वे सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचारिणी रहती है। (महाभारत, शान्ति पर्व अध्याय 320)

भास की ''स्वप्नवासदत्तम'' में राजकुमारी वासवदत्ता अपने पिता अवन्ति नरेश प्रद्योत की नाराजगी की परवाह किये बिना कौशाम्बी नरेश उदयन से प्रेम विवाह करती है। श्री हर्ष के ''नैषधीय चरित'' में दमयन्ती,कालिदास की 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में शकुन्तला, 'कुमार सम्भव' में पार्वती और 'रघुवंशम्' में इन्दुमती वास्तविक अर्थो में स्वयंवरा है जिन्होंने अपने विवेक से अपने जीवनसाथी का चयन किया।

उपर्युक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीनकाल से ही संस्कृत साहित्य में स्त्री चेतना के स्वर सुने जा सकते हैं। संस्कृत रचनाकारों ने स्त्री को साहित्य में उच्च एवं विशिष्ट स्थान प्रदान करते हुए उसके गौरवमय स्वरूप का अंकन किया है। उन्होंने उसके गुणों व क्षमताओं को स्वीकार करते हुए जहाँ एक ओर उसका सम्मान किया है वहीं दूसरी ओर उसके साथ होने वाले अन्याय शोषण को भी चित्रित किया है। लेकिन उल्लेखनीय यह है कि ये स्त्रियाँ उस अन्याय व दमन को चुपचाप नहीं सहकर साहित्य में ही नहीं जीवन में भी उसके विरुद्ध विद्रोह करती नजर आती है। आज के युग में जब संवैधानिक रूप से स्त्री को काफी हद तक पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हो गए है तो, ''आवश्यकता है नए संदर्भ में नारीत्व को नए सिरे से परिभाषित करने की या मध्यकाल में खोई हुई प्राचीन काल की परिभाषा को वापस पाने की । नारीत्व जिसका अपना पृथक अस्तित्व हो। अपना एक अहम हो, गौरव हो। अपना स्वाभिमान, अपनी उपयोगिता, अपनी सार्थकता हो। जो न पुरुष से हीन माना जाए, न पुरुष की बराबरी में अपनी क्षमताओं का अपव्यय करे। जो पुरुष का पूरक हो। उसकी प्रेरणा हो ।''[7] इस सम्बन्ध में प्राचीन साहिंत्य के ये स्त्री–पात्र प्रेरणा का कार्य कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रतिभा जैन, संगीता शर्मा (सम्पादक) – भारतीय स्त्रीः सांस्कृतिक सन्दर्भ, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ–225
2. ए.एस. अल्तेकर, पोजिशन ऑफ वुमेन इन द हिन्दू सिविलाइजेशन, द कल्चर पब्लिकेशन हाउस, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस, 1933 पृष्ठ 11–12
3. पुष्पावती खेतान, नारी अभिव्यक्ति और विवेक, पृष्ठ–13
4. प्रतिभा जैन, संगीता शर्मा (सम्पादक) – भारतीय स्त्रीः सांस्कृतिक सन्दर्भ, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ–261
5. डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास – रामायण कालीन समाज, सत्साहित्य प्रकाशन, 1958 पृष्ठ – 145
6. सुखमय भट्टाचार्य, महाभारतकालीन समाज, पुष्पा जैन(अनुवादिका) –लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966
7. आशारानी व्होरा भारतीय नारीः दशा, दिशा – पृष्ठ–173

❖◆❖